रसना पुकारि कै बिचारी पचि हारि रहै
कहै कैसें अकह, उदेग रूँधि के मरौं।
हाय कौन वेदनि बिरंचि मेरे बाँट कीनी
निबटि परौं न क्यों हूँ ऐसी बिधि हौं गरौं।
आनँद के घन हौ सजीवन सुजान देखौ
सीरी परि सोचनि अचंभे सों जरौं मरौं ॥४६॥

प्रकरण—विरहिणी मर्मांतक वेदना सहते हुए भी जी रही है। इसी अपनी विषम वेदना का निवेदन वह प्रिय के प्रति कर रही है। उसमें प्रिय-दर्शन की लालसा है। वह जलाती ही नहीं उजाड़े भी दे रही है, प्राणों को मरोड़े भी डाल रही है। लालसा के अतिरिक्त उद्वेग है। वह घेरकर मारता है, फिर भी नहीं मरती। जीभ पुकारकर भी कुछ कह नहीं पाती, कंठावरोध होने पर नहीं मरती। शरीर गल रहा है, फिर भी समाप्त नहीं होती। ठंडी पड़ती हूँ सोच से, फिर भी नहीं मरती। अचंभे से जलती हूँ, फिर भी नही मरती।

चूर्णिका—आरति = लालसा। जारति = जलाती है। उजारति = उजाड़े डालती है। मारति = मारती है, जी को मरोड़ डालती है। मरोड़कर मारे डालती है। कहा = क्या। रसना = जीभ। बिचारी = जिसका कोई वश नहीं चलता। पचि = परेशान होकर। हारि० = थक जाती है, हार मान बैठती है। कैसें = किस प्रकार से। अकह = अकथ्य, न कही जा सकने योग्य। उदेग = (उद्वेग) घबराहट। रूँधि कै० = (उद्वेग से) घिरकर भीतर ही भीतर मरी जाती हूँ। वेदनि = वेदना, पीड़ा। बिरंचि = (विरिंचि) ब्रह्मा। मेरे० = मेरे हिस्से में डाली। निबटि० = चुक क्यों नहीं जाती। ऐसी० = इस प्रकार (अत्यधिक) मैं गल रही हूँ। निबटि परौं० = इस प्रकार (कष्ट सहकर) गलती जा रही हूँ, क्यों नहीं एकबारगी ही चुक जाती। सीरी = ठंडी। मरौं = दिन काट रही हूँ। सीरी० = सोच के मारे ठंडी पड़कर। अचंभे = आश्चर्य से जलती हूँ। मरौं = इस प्रकार मैं दुःख की विषमता में पड़ी हुई दिन काट रही हूँ।

तिलक—हे आनंद के बादल सजीवन सुजान, देखिए मेरी कैसी विषम स्थिति है। मरने की सभी स्थितियाँ होने पर भी मैं मर नहीं रही हूँ। घोर कष्ट सह रही हूँ। सबसे पहले हृदय को ही देखिए। उसमें आपके दर्शन की जो लालसा है वह भीतर आग लगाकर जला रही है, उजाड़े डाल रही है, जी को भी मरोड़कर मारे डाल रही है, बोलिए क्या करूँ। जीभ बेचारी पुकारकर परेशान होकर थक जाती है, वह हार मान बैठती है। जो कहा ही नहीं जा सकता उसे कहे भी तो कैसे कहे। भीतर से उद्वेग गले को रूँधे दे रहा है, मैं मर रही हूँ (मरणांतक वेदना सह रही हूँ)। ब्रह्मा ने भी मेरे भाग्य में न जाने कौन सी वेदना दे रखी है कि मैं कुछ ऐसे ढंग से जल रही हूँ कि नित्यप्रति क्षीण होती जाती हूँ, पर ऐसा नहीं होता कि किसी प्रकार एकबारगी ही समाप्त हो जाती, जिससे नित्यप्रति होनेवाली वेदना से तो राहत मिलती। मारे चिंताओं के तो ठंडी पड़ती हूँ और फिर अचंभे से जलने लगती हूँ, इस प्रकार की विषम विरोधात्मक स्थिति में अपने कष्ट के दिन काट रही हूँ।

व्याख्या—हिये० = हृदय में जो जमकर बैठी है। जु = जो (भीषण)। आ :त = लालसा के कारण होनेवाली वेदना। सु = सो, वह (भीतर ही भीतर प्रज्वलित होनेवाली)। जारति = भीतर से जलाकर राख किए डालती है। उजारात = घर जलने पर कुछ अंश फिर भी रहने के योग्य बच सकता है, पर जब नहीं बचता तो घर उजड़ जाता है, वहाँ कोई बसता नहीं। 'आरति' के कारण अंत:करण में और वृत्तियों के रहने का स्थान तक नहीं रह गया है। मारति = प्राण उस उजाड़ खंड में भी बसे है, उसे छोड़ नहीं रहे हैं, इस पर उन्हें मार-मारकर निकाल रही है। मरोरे० = प्राणों को मरोड़े डाल रही है, नहीं निकल रहे हैं इसलिए बरबस खींचकर निकाल रही है। जिय० = जो जी इस उजाड़ में भी पड़ा रहकर जी रहा है। कहा० = मुझे तो कोई उपाय नहीं सूझ रहा है, आप कुछ बता सकें तो बताएँ। रसना = आस्वाद जाननेवाली जीभ को आस्वाद तो मिलता नहीं। केवल चिल्लाना पड़ रहा है। पुकारि के = जितनी शक्ति थी उतनी लगाकर वह पुकार चुकी। बिचारी = न आस्वाद ही मिला, न पुकारने में ही कोई सफलता मिली। पचि० = केवल परेशानी ही हाथ लगी। हारि रहै = पहले कभी ऐसी स्थिति उसकी नहीं

हुई है, पहली ही बार उसने हार मानी है। कहै० = मौन साधने के अतिरिक्त उसके पास कोई चारा नहीं है, पुकारने में सफलता नहीं मिली, कोई कहे कि क्या पीड़ा है इसका विवरण मिलने से कदाचित् कोई सफलता मिलती तो उसका उत्तर यह है कि वेदनाएँ अनिर्वचनीय हैं, विलक्षण हैं; कही कैसे जा सकती हैं। उदेग = बाहर जब जीभ ने नहीं कहा तो भीतर वे ही वेदनाएँ लौटकर व्याकुलता उत्पन्न करती हैं। रूँधि० = न बाहर जाते बनता है न भीतर रहते। श्वासावरोध हो रहा है। मरौं = मर रही हूँ, लालसा ने प्राणों को मारा पर नहीं मरी, अब व्याकुलता से मर रही हूँ, अब मरी तब मरी फिर भी नहीं मरी, केवल कष्ट भोगती रह गई। हाय = अत्यंत वेदना व्यंजक। कौन = जैसी किसी दूसरे के बाँटे नहीं आई, सबसे विलक्षण और भीषण। वेदनि = वेदना, पीड़ा, कष्ट की अनुभूति जिसका अनुभव मैंने ही पहले नहीं किया, किसी ने नहीं किया। विरंचि० = ब्रह्मा ने कुछ भी सोचा-विचारा नहीं। मेरे० = मैं सहन करने में सब प्रकार से असमर्थ हूँ। बाँट कोनो = इनके हटने की कोई संभावना नहीं, भाग्य में ही ऐसा लिख रखा है। निघटि० = नितराम् घट जाना, सर्वतोभावेन समाप्त हो जाना! धीरे-धीरे घटने में न जाने कितने दिनों तक कष्ट भोगना पड़े। क्यौं हूँ = परिस्थितियाँ भी कैसी हैं, मैं चाहती भी हूँ फिर भी वैसा नहीं होता। ऐसी० = इस रीति से, इतना तिल-तिल कर घट रही हूँ कि बहुत दिनों के लग जाने की संभावना है। गरौं = भीतर ही भीतर से क्षीण हो रही हूँ। अब कैसे गली इसका अंजाद नहीं लग रहा है। आनँद० = आप आनंद के बादल, मैं विषाद की पपीही। सजीवन = जीवन के सहित, पानी के सहित, जिलानेवाले। जब मरते हुए भी मर नहीं रही हूँ तब इसका कारण यही हो सकता है कि आपकी ही संजीवनी शक्ति, आपकी ही प्रीति मुझे जिला रही है। सुजान = ध्यान देकर आप देखिए; आपको भी कभी इस प्रकार की स्थिति दिखाई न पड़ी होगी, सुनाई चाहे पड़ी हो। सोरी = ठंडी, संकुचित, सोच में संकोच करने की वृत्ति होने से। परि = पड़कर पहले ठंडी पड़कर, जो सूखा होता है उसे जलने में विलंब नहीं लगता, पर, ठंढे को, गीले को देर लगती है। फिर भी जल जाती हूँ। सोच से ठंढा पड़ने का कारण है निरंतर आँसू का प्रवाह। अचंभे० = आश्चर्य विकासशील है इससे

उसे जलानेवाला (बढ़ानेवाला) कहा है। मरीं = सोच से जो संकोच हुआ था वह बचने से भर गया, पूरा हो गया।

व्याकरण—'मरना' क्रिया का अर्थ 'दिन काटना' होता है। तुलसीदास ने भी लिखा है—

नैहर जनम मरबि वरु जाई। जियत न करबि सवति सेवकाई॥

पाठांतर—हँबिके = हँविये (हँवी हुई में)।